International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 14-09-2026, Accepted: 14-10-2026, Published: 29-10-2026
Volume 12, Issue 4, 2026, Page No. 61-64

समकालीन हिंदी कविता में सौंदर्य–बोध के प्रधान रूपों का मूल्यांकन

मंजेश कुमार भारती
सहायक आचार्य, हिंदी–विभाग, किसान पी0जी0 कॉलेज तमकुहीरोड, सेवरही कुशीनगर, उत्तर प्रदेश, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.4.12251

सारांश
सौंदर्य की सत्ता को लेकर वस्तुवादी, भाववादी, आत्मवादी, उदात्तवादी, कल्पनावादी और शिल्पवादी जैसे कई परस्पर विरोधी विचार–प्रवाह कविता के आरंभिक काल से ही चले आ रहे हैं।वस्तुवादी सौंदर्य को वस्तुगत सत्ता में खोजते हैं, भाववादी मनुष्य की मनोभावनाओं में, आत्मवादी वस्तु के आंतरिक स्वरूप में, उदात्तवादी महान आत्मा एवं विचारों में, कल्पनावादी बिंबों में, तथा शिल्पवादी रचना की तकनीक एवं शिल्प में सौंदर्य का संधान करते आए हैं।

मूल शब्दः वस्तुगत सौंदर्य, यथार्थवादी, मानवतावादी, लोकवादी, प्राकृतिवादी, बौद्धिकतावादी,अलंकरण, बिम्ब, प्रतीक सपाटबयानी आदि

समकालीन कविता का सौंदर्यबोध पारंपरिक (शास्त्रीय मापदंड) मापदंडों से अलग होकर के यथार्थ की जमीन से जुडा है। यह सौंदर्य बोध केवल अंत: या बाह्य रूप में संदर्भित नहीं करती है बल्कि आम आदमी के जीवन को भी रेखांकित करती है। अन्य सौंदर्य बोध के आधार पर समकालीन कविता सामाजिक और दैनंदिन यथार्थ प्रतिशोध में अपना स्वरूप ग्रहण करती है।इस आधार पर सौंदर्य–बोध के अनेक वर्गीकरण संभव हैं। किंतु समग्रता में आकलन करने के पश्चात, समकालीन कविता के विशेष संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, इन्हें दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: प्रधान रूप और गौण

समकालीन कविता में सौंदर्य–बोध के प्रधान रूप निम्नलिखित हैं: वस्तुगत सौंदर्य–बोध शिल्पगत सौंदर्य–बोध।

1. वस्तुगत सौंदर्य–बोध

वस्तुगत सौंदर्य–बोध को 'रूपगत सौंदर्य–बोध' की संज्ञा भी दी जाती है। इस धारा के सौंदर्य–चिंतकों के अनुसार सौंदर्य वस्तु की अपनी सत्ता पर निर्भर करता है; अर्थात सौंदर्य वस्तु में स्वतः अंतर्निहित होता है। उस पर मन या आत्मा का आरोप करना व्यर्थ है। दूसरे शब्दों में, सौंदर्य की सत्ता को वस्तु से पृथक् करके मनुष्य की रुचि या अनिच्छा पर छोड़ देना असंगत है।वस्तुगत सत्ता कोई अलौकिक या अगोचर सत्ता नहीं है। सौंदर्य वस्तु का स्वाभाविक गुण है, जो उसके रूप और आकार में निहित रहता है। वस्तुगत सौंदर्य–बोध का मूल्यांकन निम्नलिखित उप–शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है:

- यथार्थवादी सौंदर्यबोध
- मानवतावादी सौंदर्यबोध
- लोकवादी सौंदर्यबोध
- प्राकृतिक सौंदर्यबोध
- बौद्धिक सौंदर्यबोध

यथार्थवादी सौंदर्यबोध

यथार्थवाद साहित्य चिंतन की एक विशिष्ट पद्धति है, जिसके अनुसार रचनाकार अपनी कृति में जीवन के वास्तविक और प्रामाणिक रूप का अंकन करता है। यह दृष्टिकोण मूलतः आदर्शवाद का विरोधी है। यथार्थ के दो प्रमुख रूप देखने को मिलते हैं: प्रकृतिवाद (Naturalism) और सामाजिक यथार्थवाद (Social Realism)। प्रकृतिवाद नियति (भाग्य) में पूर्ण विश्वास रखकर चलता है। नियतिवादी होने के कारण यह व्यक्ति अथवा समाज में किसी भी सुधार को असंभव मानता है; इस अर्थ में यह निराशावादी दृष्टिकोण है। इसके विपरीत, सामाजिक यथार्थवाद न तो नियतिवादी है और न ही निराशावादी। यह समाज परिवर्तन और मानव–प्रयासों में विश्वास रखता है। पाश्चात्य साहित्य में जेम्स जॉयस, एज़रा पाउंड, एमिल जोला, गी द मोपांसा, ई. ई. कमिंग्स, गुस्ताव फ़्लॉबेयर आदि प्रकृतिवाद के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं; जबकि बाल्ज़ाक, लियो टॉल्स्टॉय और मैक्सिम गोर्की सामाजिक यथार्थवाद के प्रमुख स्तंभ हैं। भारतीय साहित्य में अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की रचनाओं पर फ्रायडवादी मनोविश्लेषण का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसके कारण समीक्षक अक्सर उन्हें प्रकृतिवादी अथवा मनोविश्लेषणवादी धारा के अंतर्गत परिगणित करते हैं।आगे चलकर प्रयोगवादी विचारकों–जैसे रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, गजानन माधव 'मुक्तिबोध' तथा धर्मवीर भारती की रचनाशीलता में भी सामाजिक यथार्थ चेतना प्रखर होकर उभरी। 'हिन्दी साहित्य–कोश' के अनुसार– ष्आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का सम्मुच्चय ही सामाजिक यथार्थ है। ये शक्तियाँ मिलकर उस सामाजिक वातावरण का निर्माण करती हैं, जिनसे हमारे संस्कारों की सर्जना होती है।" [1]

सातवें दशक के दौरान 'विद्रोही पीढ़ी', 'विजप' और 'अकविता' आंदोलनों ने मृत्युबोध, अनास्था और आक्रामक युयुत्सा (युद्ध–प्रियता) के जिन रुग्णवादी संस्कारों को प्रश्रय दिया था, आठवें दशक तक आते–आते उनका पूर्ण अवसान हो गया। इसके साथ ही नए–नए काव्य आंदोलनों की होड़ भी समाप्त हो गई।

आठवें दशक में मुख्य रूप से दो प्रमुख काव्य–धाराएँ उभरींकृ 'विचार कविता' और 'जनवादी कविता'। सामाजिक यथार्थ की अवधारणा में जिस आर्थिक संरचना की परिकल्पना की गई है, समकालीन कविता उसके प्रति अत्यंत संवेदनशील और सचेत है।कवि इस स्थिति को रेखांकित करते हुए लिखता है:

"एक भेड़ है/जो दूसरों की ठंड के लिए
अपनी पीठ पर/ऊन की फसल बो रही है।" [2]

यहाँ आम आदमी कुहरे, कीचड़ और काँच से बनी एक ऐसी निस्तेज अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित है, जिसमें न तो कोई उत्तेजना शेष है और ना ही प्रतिरोध की क्षमता। निरंतर शोषित होना ही मानो उसकी नियति बन चुकी है। वह एक ऐसी असहाय 'भेड़' की भाँति है, जो अवसरवादी बुद्धिजीवियों के

स्वार्थ–साधन का माध्यम बनी हुई है। कवि इस आत्मगत तनाव को केवल व्यक्तिगत पीड़ा के रूप में नहीं, अपितु व्यापक सामाजिक एवं वर्ग–गत धरातल पर अभिव्यक्त करता है:–

"हर मिल में अमन है/चौन है/उत्पादन बढ़ रहा है
उत्पादन करने वालों का वजन घट रहा है
कैसे बढ़े लोगों का लगातार घटता वजन
कैसे सुधरे उनके आँखों की रोशनी
कैसे सँवरे उनके बाल/कैसे आए उनके बच्चों के
चेहरों पर/सदियों से गायब चमक।" [3]

वस्तुतः निष्पक्ष और अर्थपूर्ण लेखन के लिए अन्याय, दमन, शोषण और एकाधिकारवाद (इजारेदारी) का समर्थन करना कदापि संभव नहीं है। यही कारण है कि समकालीन कविता में आठवें दशक के नए रचनाकारों का स्थापित व्यवस्था के प्रति जो आक्रामक एवं विद्रोही रुख दिखाई देता है। "आम आदमी के लिए दो रोटियों के सीमित लक्ष्य तक जीवन–निर्वाह करना और अपने अस्तित्व की पहचान बनाये रखना दूभर हो गया। वह स्वयं को बड़ा असुरक्षित, बेसहारा, दिशाहीन–सा हाथ में राशन कार्ड थामे, दीवारों पर टंगे पोस्टर अथवा सलीब पर लटके भूखे मसीहा की तरह हवा में झूलता हुआ पा रहा था।" [4] जन–आक्रोश तथा विद्रोही मुद्रा में अत्यंत आक्रामक और नक्सली मुद्रा में प्रतिपादित करते हैं:

"तुम वापस चले जाओ/हत्यारी संभावनाओं के
नीचे/सहनशीलता का नाम/आज भी हथियारों की सूची में
नहीं है/
रात खत्म हो चुकी है/और वह सुरक्षित नहीं है/जिसका नाम
हत्यारों की सूची में नहीं है।" [5]

समकालीन काव्य–धारा में व्यंग्य, आक्रोश, तीखे प्रहार और आक्रामकता की दृष्टि से धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, वेणुगोपाल, रणजीत तथा लीलाधर जगूड़ी के नाम विशेष रूप से अग्रगण्य हैं। अशोक वाजपेयी के शब्दों में "यद्यपि पिछले पच्चीस वर्षों में हिन्दी साहित्य पर पश्चिम का गहरा प्रभाव रहा है, पर इधर कम–से–कम समकालीन कविता को देखते हुए लगता है कि हमारी आधुनिकता अब उतनी पश्चिमाभिमुख नहीं रही।" [6]

मानवतावादी सौंदर्यबोध

मानवतावादी सौंदर्य सामान्य 'मानवीय सौंदर्य' की धारणा से मूलतः भिन्न है। मानवीय सौंदर्य में मुख्यतः इंद्रिय–बोध (शारीरिक व आंगिक आकर्षण) की प्रधानता होती है, जिसके कारण वह स्थूल एवं बाह्य चित्रण तक ही सीमित रह जाता है। इसके विपरीत, मानवतावादी सौंदर्य अखंड, अगोचर एवं रूपातीत होता है; मात्र इंद्रिय–बोध के माध्यम से उस सूक्ष्म एवं अलौकिक तत्त्व को अनुभूत नहीं किया जा सकता। उसकी प्रतीति के लिए सूक्ष्म मानवीय संवेदना, अंतर्दृष्टि और गहन अनुभूति की आवश्यकता होती है।

सातवें दशक की कविता विभिन्न अल्पकालिक एवं क्षैणिक काव्य–आंदोलनों के भंवर में उलझी रही, जिसके कारण मानवतावादी सौंदर्य का एक स्वस्थ, संतुलित और उदात्त स्वरूप पूर्णतः विकसित नहीं हो सका। किंतु, सातवें दशक के उत्तरार्द्ध और आठवें दशक की समकालीन कविता पुनः गहन मानवीय सरोकारों और लोक–संवेदना से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गई। समकालीन कविता में मानवतावादी सौंदर्य को अभिव्यक्त एवं प्रक्षेपित करने के लिए निम्नलिखित चार प्रमुख धरातल (आयाम) स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं:

1. अभावपरक धरातल

अभावपरक धरातल के अंतर्गत 'अभाव' (नहीं) को ही 'सद्भाव' (हाँ) की अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। समाज में मानवता के अभाव अथवा उसके क्षरण को उजागर करना, वस्तुतः मानवता के प्रति अटूट निष्ठा और श्रद्धा का भाव प्रज्वलित करना ही है। इससे पाठक और समाज में कम से कम यह चेतना अवश्य जाग्रत होती है कि यदि मानवतावादी मूल्यों का निष्ठापूर्वक पालन किया जाए, तो विश्व में सुख, शांति और सौहार्द की संभावनाएँ बहुगुणित हो सकती हैं। आज का मनुष्य विषमता, असुंदरता और विरूपता के दुष्कर जाल में उलझकर रह गया है; किंतु समकालीन कविता के लिए यही असुंदरता और विरूपता विशेष मूल्य और सार्थकता धारण करती है।

2. अनुभूतिपरक धरातल

अनुभूतिपरक धरातल के अन्तर्गत अनुभूति और संवेदनशीलता को मानवता की कुंजी माना जाता है। क्योंकि इसी रामबाण के सहारे समकालीन कवि जाति, देश, भाषा, वर्ग और धर्म के संकीर्ण बन्धनों को तोड़कर प्राणिमात्र से प्रेम करने की संवेदना जुटा लेता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार ष्यह अपनी अपार सहानुभूति से पद्दलित मानव के अशेष निहित शक्तियों और संभावनाओं का उल्लेख करता है।" [7] प्रेम अनुभूति की वस्तु है, विचार की नहीं। सभी धर्मों के मूल तत्व एक जैसे ही हैं, फिर भी मानवता की अनुभूति उनके व्यावहारिक धरातल पर नहीं आ पाती। विश्व–प्रेम और मानवतावाद को बढ़ावा देने का काम जितना समकालीन कवियों ने किया है, उतना किसी ने नहीं किया; यथा–

"आत्मिक सूत्र अदेखे/कुसुम–गन्ध से जुड़े
चुम्बन खिंचे लोहे से/ह्रदय के ह्रदय मुड़े।" [8]

3. सांकेतिक धरातल

सांकेतिक धरातल के अन्तर्गत वैश्विक मानवतावाद को प्रतीकात्मक अभिव्यंजना द्वारा रूपायित किया जाता है। मानवता जब अनुभूति का रूप धारण कर लेती है तो व्यक्ति अपने आप को भूलकर दूसरों के कष्ट से विचलित होने लगता है

4. विसंगतियों की आड़ का धरातल

मानवतावादी सौंदर्य की पुनर्स्थापना के लिए विद्रोह और असंतोष का स्वर ही मुख्य संवाहक माना जाता है। यह प्रतिरोध धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक–किसी भी धरातल पर प्रस्फुटित हो सकता है। तथाकथित वर्गहीन समाज की अवधारणा के दावों के बावजूद, आज भी प्रभुत्वशाली एवं सामंती वर्ग अपने वर्चस्व के 'अहंकार' में लिप्त है। आज के कलुषित परिवेश में इंद्र जैसे शक्तिशाली एवं शोषक वर्ग द्वारा प्रताड़ित 'अहल्या' मात्र एक पौराणिक पात्र न रहकर, आधुनिक नारी–अस्मिता का ज्वलंत प्रश्न–चिह्न बनकर खड़ी है। वह स्थापित मर्यादाओं और शोषक वर्ग (राम) से सीधा प्रतिप्रश्न करती है:

"सर्वमान्य सामान्य न नारी का जीवन है,
दग्ध, प्रवंचित, अभिशापित नारी समाज है३
× × ×× ×× ××
हरण–अपहरण, हिंसा का आतंक घना क्यों?
जीवन के यातना–शिविर में कुंठा या संत्रास तना क्यों?" [9]

लोकवादी सौंदर्य बोध

'लोक' शब्द संस्कृत की 'लोक दर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है। 'लोक दर्शने' धातु का अभिप्राय है 'देखना'। इस धातु का ललकार में अन्य पुरुष एकवचन रूप 'लोकते' बनता

है। इस प्रकार 'लोक' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'देखने वाला'। [10] मानक हिन्दी–कोश में भी लोक शब्द का यही व्युत्पत्तिमूलक अर्थ बताया गया है'। [11] इस प्रकार देखने की क्रिया करने वाला समस्त जन–समुदाय 'लोक' है।

'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' (FOLK) का पर्याय है, जिसकी उत्पत्ति एंग्लो सेक्सन शब्द फोल्क (FO1.C) से मानी जाती है; जिसका अर्थ है– असभ्य एवं मूढ़ समाज'। [12] इस प्रकार पाश्चात्य जगत् में लोक शब्द श्असभ्य, असंस्कृत एवं विमूढ़ समाज के अर्थ का द्योतक है।

भारतीय वाङ्मय के प्रसिद्ध ग्रन्थों वेदों, उपनिषदों, अष्टाध्यायी, पतंजलि के महाभाष्य, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, महर्षि व्यास के महाभारत आदि में लोक का अर्थ 'साधारण जनता' के रूप में कई स्थानोंपर किया गया है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि गाँवों और नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।" [13] लोकवादी सौंदर्य वस्तुतः वस्तुगत सत्ता का ही प्राण तत्त्व है। ग्रामीण जीवन की दैनिक वस्तुओं का यथार्थवादी अंकन किया गया है:

"यहीं से मटके लिए एक–एक अहीरों को/जाते देखता हूँ
कभी–कभी किसी के सिर पर लकड़ियों के बोझ भी होते हैं
या गठरियाँ, खरीदे सौदे–सुलुफ की
उनकी परछाइयाँ शांत हरे जल पर अच्छी लगती हैं।" [14]

प्रकृतिवादी सौंदर्यबोध

समकालीन कविता यथार्थ की बेबाक और निर्भीक अभिव्यक्ति है; यह युगीन अंतर्विरोधों, विसंगतियों और सामाजिक–राजनीतिक विडंबनाओं का एक स्पष्ट एवं सशक्त हस्ताक्षर प्रस्तुत करती है। समकालीन कविता में कुछ रचनाएँ शुद्ध प्रकृति–परक हैं, किन्तु ऐसी रचनाएँ उँगलियों पर हैं। ये रचनाएँ मानवीय सृजनशीलता की अलग पहचान बनाती हैं। इनमें राजनीतिक उठा–पटक नहीं है, बड़ी सरल, सरस एवं अनुशासित है। उदाहरणार्थ–

"क्यों न ऐसा हो कि आज शाम/हम अपने थैले और डोलचियाँ/रख दें एक तरफ
और सीधे धान की गंजरियों तक चलें/हम सीधे वहीं पहुँचे/एकदम वहीं
जहाँ चावल/दाना बनने से पहले/सुगंध की पीड़ा से छटपटा रहा हो।" [15]

प्राकृतिक सौन्दर्य को लेकर समकालीन कविता में अनेक सुन्दर मिशालें प्रस्तुत की गई हैं; यथा–सुन्दर बाग, पाषाणी शिलाखण्ड आदि।

बौद्धिक सौंदर्य बोध

समकालीन कविता में बौद्धिक सौंदर्य–बोध को मुख्य रूप से तीन कोणों से विश्लेषित एवं अनुभूत करने का प्रयास किया गया है:

1. मस्तिष्क–मूलक (वैचारिक धरातल)
2. सपाटबयानी (प्रत्यक्ष एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति)
3. तर्क–मूलक (युक्तिसंगत दृष्टिकोण)

बौद्धिक सौंदर्य के इस त्रिकोण रूपी अवलोकन में कवि पूरी तरह से स्वतंत्र, स्वायत्त एवं स्वच्छंद है; उसके विचार किसी बाह्य सत्ता या विचारधारा द्वारा आरोपित (प्रत्यारोपित) नहीं हैं। बौद्धिकता के प्रति इसी अतिशय आग्रह और यथार्थ के नग्न प्रकटन के कारण समकालीन कविता में यदा–कदा 'असुंदर' या अप्रचलित शब्दों के प्रयोग तो अवश्य मिलते हैं, किंतु वे कहीं भी 'अनर्गल' या अर्थहीन शब्दावली का रूप नहीं लेते। भाषा के प्रति इसी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी को सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी एक सुप्रसिद्ध घोषणा में रेखांकित करते हैं:

"एक गलत भाषा में
गलत बयान देने से मर जाना बेहतर है/
यह हमारी टेक है।" [16]

बौद्धिक सौन्दर्य में सपाटबयानी का महत्वपूर्ण स्थान है। सपाटबयानी की भाषा अत्यन्त सरल, सरस एवं सीधी होती है, इसमें भाव–जाल नहीं होता। समकालीन कविता में सपाटबयानी का आगमन निम्व के विरोध में हुआ है। सपाटबयानी में वास्तविकता को और अधिक जीवंतता प्रदान करने के लिए रघुवीर सहाय तथा अन्य बहुत सारे समकालीन कवियों ने एक और अच्छा तरीका निकाला है। यथा–

"प्रिय पाठक ! ये बच्चे हैं/प्रतीक नहीं/और इस कविता में मैं हूँ
मैं कोई रूपक नहीं यह मै खड़ा हूँ/भरा पूरा आदमी।" [17]

शिल्पगत सौंदर्य–बोध

समकालीन कविता में विषय–वस्तु (कथ्य) के साथ–साथ 'तकनीक' (Technique) अथवा शिल्प–विधान पर भी विशेष बल दिया गया है। वस्तुतः 'तकनीक' आंग्ल भाषा का शब्द है, जो साहित्य में 'शिल्पविधि' (Craftsmanship) का ही पर्याय है। काव्य में शिल्प का पक्ष कविता के बाह्य आवरण एवं अभिव्यंजना–कौशल का संवाहक होता है; इसके बिना काव्य–सौन्दर्य का पूर्ण प्रस्फुटन संभव नहीं है।

शिल्पविधिक दृष्टिकोण से समकालीन कविता के शिल्पगत सौंदर्य–बोध को निम्नलिखित मुख्य बिंदुओं के अंतर्गत विश्लेषित एवं रेखांकित किया जा सकता है:–

1. काव्यभाषा और सृजनशीलता,
2. अलंकरण
3. बिम्बगत सौन्दर्य
4. प्रतीकगत सौन्दर्य
5. छन्द और लयात्मक सौन्दर्य आदि।

1. काव्यभाषा और सृजनशीलता

कविता मूलतः अनुभूति की सघन अभिव्यक्ति है और भाषा उस अभिव्यक्ति को आकार देने वाला मुख्य माध्यम। काव्य–रचना की प्रक्रिया में मानव जीवन के विविध अनुभवों का भिन्न–भिन्न धरातलों पर पुनः सृजन होता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में ष्वर्षों की चारुता से लेकर शब्दों के रूप–सौन्दर्य और अर्थ–सौन्दर्य का आकलन करते हुए कवि अपनी भाषा–प्रतिभा का निर्माण करता है, जिससे अभिव्यंजना का सम्पूर्ण सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है।" [18] समकालीन कवियों ने देशज शब्दावली का प्रयोग करते हुए जिन कविताओं की रचना की है।वे अपने भाषिक सौन्दर्य से सजीव हो उठी हैं

"इसको कोई पियरी नहीं चढ़ाता न आदमी रामनामी डाले
सुबह तड़के भागते दिखाई देते हैं
न अधेड़ औरतें ठाकुर जी का
सिंहासन लिए बतियाती जाती है।" [19]

2. अंलकरण

अलंकार काव्य का शोभाकारक धर्म है, इस धर्म की चरम परिणति अलंकर या सजावट में है। समकालीन कविता में अलंकरण से सम्बन्धित जो भी विषय सामग्री आएगी, वह नूनमेव सौन्दर्य–बोधक होगी। काव्य में रमणीयता और चमत्कार का

उद्रेक करने हेतु अलंकारों की स्थिति आवश्यक है, अनिवार्य नहीं। विरोधाभास अलंकार का एक उदाहरण–

मैं सुखी/हो रहा हूँ/मैं दुखी/हो रहा हूँ
मैं सुखी–दुखी होकर/दुखी–सुखी हो रहा हूँ।' [20]

यहाँ सुख–दुख परस्पर विरोधी तत्व हैं। कवि दुखी है, लेकिन सुख को पहचानता भी है।

3. विम्बगत सौंदर्य

बिम्ब का शाब्दिक अर्थ है– मूर्ति, छाया, झलक, प्रतिबिम्ब आदि। अंग्रेजी में बिम्ब को 'इमेज' (Image) तथा बिम्ब विधान को 'इमेजरी' (Imegery) कहा गया है। काव्य में अप्रस्तुत (mieku) का महत्व अपरिहार्य है; बिम्ब उसी अप्रस्तुत का मानसिक या काल्पनिक रूप होता है। विधायक तत्वों के आधार पर बिम्ब प्रधानतः दो प्रकार के होते हैं– मानस बिम्ब तथा ऐन्द्रिय बिम्ब।

4. प्रतीकगत सौंदर्य

प्रतीकश शब्द का शाब्दिक अर्थ है–चिह्न, प्रतिरूप या प्रतिनिधि। प्रतीक की सहायता से बहुत विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखने वाली बात को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। कल्पना से बिम्ब का जन्म होता है और बिम्ब से ही प्रतीक आविर्भूत होता है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है, तब बिम्ब की सृष्टि होती है और जब बिम्ब व्युत्पन्न अथवा बार–बार प्रयुक्त होने लगते हैं और किसी निश्चित अर्थ को निर्धारित करने लगते हैं, तभी वे प्रतीकों का निर्माण करते हैं या प्रतीक बन जाते हैं। डॉ० केदारनाथ सिंह ने प्रतीकों के निम्न वर्ग स्वीकार किए हैं "परम्परागत प्रतीक, साम्प्रदायिक प्रतीक, आध्यात्मिक प्रतीक, रहस्यात्मक प्रतीक, वैयक्तिक प्रतीक और स्वप्नपरक प्रतीक।" [21]

निष्कर्षत

यह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में वस्तुगत सौंदर्य के अंतर्गत परिगणित सभी उप–आयाम सौंदर्य की वास्तविक सत्ता को मनुष्य के कर्ममय जीवन और लौकिक यथार्थ में ही खोजते हैं। शिल्पगत सौंदर्य कविता की सुंदरता, उसकी बनावट आदि को रेखांकित करती है और आकर्षक रूप प्रदान करती हैं।

संदर्भ

1. डॉ धीरेंद्र वर्मा: हिंदी साहित्य कोश; भाग –1, पृष्ठ 758
2. धूमिल: सांसद से सड़क तक, पृ. 104
3. प्रताप सहगल: सवाल अभी मौजूद है, पृ. 45
4. योग– परिबोध: जनवरी –मई 1997 पृ.07
5. धूमिल: सांसद से सड़क तक,पृ.81
6. अशोक बाजपेयी: कुछ पूर्वाग्रह;अपना रथ पे हम जीते रहे, पृ. 10
7. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी: राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध, पृ. 72
8. सं० मधुकर गौड़: गीत और गीत, नगर ज्योति मुंबई, 1991, पृ . 48
9. डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित 'ललित': अभिशप्त शिला, पृ. 67–71
10. भट्टोजि दीक्षित: सिद्धान्त कौमुदी, पृ. 417
11. सं० रामचन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश, प०ल० पृ. 596
12. Encyclopaedia of social Science, Vol. V.P. 288
13. डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी: जनपद वर्ष 1, अंक–1पृ. 65
14. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना: कुआनो नदी, पृ.15
15. केदारनाथ सिंह: अकाल में सारस, पृ.13
16. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना: कुआनो नदी, पृ. 14
17. रघुवीर सहाय: आत्महत्या के विरुद्ध, पृ. 74
18. श्याम बिहारी राय: शुक्लोत्तर काव्य चिंतन ; पश्चात परिप्रेक्ष्य पृ. 181
19. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कुआनो नदी, पृ. 14
20. डॉ नामवर सिंह: कविता के नए प्रतिमान पृ. 169
- डॉ० केदारनाथ सिंह: कल्पना और छायावाद, पृ. 104